संपादक की कलम से.....

रामअवतार बैरवा

14 नवम्बर को समूचे देश में और 20 नवम्बर को विश्व में बाल दिवस पूरी शक्ति और भक्ति से मनाया जाता है । अनेक कार्यक्रम और समारोह भी आयोजित किए जाते हैं। बच्चों के समक्ष भी कार्यक्रम होते हैं और परोक्ष रूप से भी। पत्र-पत्रिकाओं से लेकर मीडिया और सोशल मीडिया पर अनेक तरह के लेख, बहस, शुभकामनाएं और बधाइयां पढ़ने और देखने को मिल जाती हैं। कई पुरस्कार भी इस अवसर पर दिए जाते हैं । सरकारी स्तर पर भी अनेक उत्सव और समारोह दिखाई पड़ते हैं। पर क्या हमने कभी यह सोचा है कि यह सब किनके लिए और क्यों होता है ? एक सीमा तक सैकण्ड्री स्कूल्स तक में कार्यक्रम आयोजित होना सूचनात्मक रूप से उचित है। जहां बच्चों के पत्र-पत्रिकाओं में बच्चों से लिखवाया जाता है, वह भी श्रेष्ठ है पर बड़ी-बड़ी पत्र-पत्रिकाएं बच्चों पर विशेषांक प्रकाशित करती हैं, क्या आज के अति-आधुनिक समय में यह उचित है ? इनमें जितने लेख होते हैं, सभी बड़े लेखकों के होते हैं। उनकी उम्र कम-से-कम 40 साल की होती है। कुछ देर के लिए वे बच्चे बनकर रचनाएं लिख भी देते हैं पर क्या वे आज के जमाने के बच्चे के मन तक नहीं उतर सकते हैं ? अपना मोबाइल तक ठीक करने के लिए उन्हें अपने बच्चों का सहारा लेना पड़ता है, मन तक कैसे उतरेंगे । वे अपने जमाने के ही बच्चे बन सकते हैं। हमारे समय में पन्द्रह साल तक के बच्चे ये मान लेते थे कि हाथी स्कूल जाता होगा। बिल्ली गाना गाती होगी। कौआ आधे घड़े में कंकड़ डालकर पानी ऊपर ले आता होगा। अब बच्चे के हाथ में पूरी दुनिया है। वह मोबाइल पर झट-से वाकिया टाइप करता है -'क्या कौआ घड़े में पत्थर डालकर पानी पी सकता है!" और उसे गूगल पर सैंकड़ों अध्यापक सूचनाएं देते हुए दिख जाते हैं -"ये महज एक काल्पनिक कहानी है। छात्र इसका उपयोग अधिक अंक प्राप्त करने के लिए तरह-तरह से लिखते हैं। आइए आपको बताते हैं कैसे जुटाएं ज्यादा अंक परीक्षाओं में।" और फिर एक नयी साइट खुल जाती है। छात्र इसे छोड़कर उसमें चला जाता है । फिर नयी साइट खुल जाती है। फिर कोई दूसरी फिर तीसरी, चौथी। आज के बच्चे को सारी सूचनाएं और जानकारियां इंटरनेट से मिल रहीं हैं। अपने पाठ्यक्रम की किताबें भी वह इंटरनेट पर ही पढ़ना पसंद करता है। इससे इतर कुछ भी पढ़ना उसे बोझ लगता है। जब तक बच्चे के हृदय तक उतरकर उसके मतलब की बात नहीं लिखी जाएगी तब तक उसे किसी साहित्य से कोई सरोकार नहीं रहेगा।

बच्चों से खुद साहित्य लिखवाया जाए तो कुछ सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर ये प्रयास बहुत मुश्किल हैं। एक तो बच्चे खुद पत्र-पत्रिकाएं खरीदने की हैसियत नहीं रखते, दूसरा अभिभावक पाठ्यक्रम से इतर उन्हें ज्यादा कुछ पढ़ने नहीं देते। संकट के छिलके उतारे जाएं तो इसका अंत नहीं। बड़े-बड़े संस्थानों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएं बंद होना इसका बड़ा प्रमाण है। सरकारी स्तर पर प्रयास इसलिए नहीं हो पा रहे कि 18 साल तक कोई वोट नहीं दे सकता । उनके हित में कौन सोचे ? आकाशवाणी/दूरदर्शन पर अवश्य निरंतर कार्यक्रम होते रहते हैं। कुछ स्वयं सेवी संस्थाएं भी प्रयास करती हैं पर जब तक घरों में विलासिता की चीजों की जगह किताबें नहीं ले पाएंगी, भविष्य पर संकट के बादल छाए रहेंगे। ये नयी पौध अगर संस्कारित पीपल और बरगद का रूप नहीं अख्तियार कर सकेगी, पूरा वातावरण विषैला बना रहेगा ।